समझौता

हिन्दी ADDA

किरण राजपुरोहित नितिला

समझौता

चाबी लगाकर फ्लैट का ताला खोलने लगी कि उसे लगा दरवाजा तो खोला जा चुका है। जय आ गए इतनी जल्दी? मन ही मन बुदबुदाई हर्षा। चिंता सी हुई। घड़ी देखी।

काँटे भाग कर पौने छह बजा ने जा रहे थे। ओह! वह खुद पूरे पौन घंटा देर से घर पहुँची है। हर्षा को खुद पर ही हँसी आ गई।

हर्षा का ऑफिस से देर से घर आना कतई पसंद नहीं है जय को। दो साल पहले नौकरी करने की इच्छा प्रकट की थी तब यही शर्त रखी थी जय ने कि मुझसे पहले घर पहुँचना होगा। मैं आऊँ तब घर मुझे खुला मिलना चाहिए। ऑफिस से थका माँदा आऊँ और मुझे दरवाजे पर लगा ताला ठेंगा दिखाए। ये नहीं चलेगा।

फुर्ती से वह अंदर दाखिल हुई। पर्स पटका। देखा जय स्नानघर में थे। वॉश बेसिन पर हाथ मुँह धोकर फटाफट रसोई में घुसी चाय के लिए। जय को ऑफिस से आते ही चाय चाहिए मसाले की खुशबू वाली। नहीं तो उनकी पेशानी पर बल पड़ जाते है। पढ़ाई से लेकर नौकरी करने तक की स्त्रियों की खामियाँ गिना डालेंगे। उनके लिए चारदीवारी ही ठीक ठहराएँगे। सुन कर मन ही मन हँसी आती कि सभी स्त्रियाँ चारदीवारी में सिमट जाएँगी तो आप ऑफिस में मन किससे बहलाएँगे? लेकिन चुप रहती। जय उन पुरुषों में से है जो स्वयं के लिए तो हर रंग आधुनिकता का चाहेंगे लेकिन पत्नी के कपड़े किस रंग के और किस तरह के आएँगे ये भी वे खुद तय करेंगे। खुद की हर सोच और करतूत को नए जमाने का जामा पहनाएँगे लेकिन पत्नी बालकनी में खड़ी भी हो जाए ये भी गवारा नहीं करेंगे।

जय को पहली बार देखा था तो मन दरक गया था। डबडबाई आँखों से माँ को देखती रही। माँ ने खुद की आँखें पोंछ उसके सिर पर हाथ फेर दिया था बस। उस स्पर्श में कई मजबूरियों की पीड़ा थी। वैधव्य से ग्रसित जवान होती बेटी की माँ जो स्वयं दूसरों की मोहताज हो उसकी मजबूरियों की गठरी हमारा समाज उत्तरोत्तर बढ़ाता ही जाता है। ऐसे में महानगर में रोजगार पाए मोटे होंठ वाले लगभग बदसूरत व्यक्ति की कृपा दृष्टि पड़ रही है तो यह बड़े सौभाग्य की बात है। पूरे कस्बे ने हर्षा के इस सौभाग्य को सराहा।

अपने मनोभावों के जंगल से निकल कर गहरी उदास साँस भरी हर्षा ने। देखा कि चाय की भगोली पड़ी थी। पी ली दिखती है। अब तैयार होना ही पड़ेगा एक अनचाही बहस के लिए बल्कि एकतरफा डाँट कहना ज्यादा ठीक होगा। अब अपनी सफाई में कुछ भी

कहना छोड़ दिया है हर्षा ने। बस सिर झुकाए सुन लेती है। उनकी शर्तों पर नौकरी की है तो सुनना ही पड़ेगा। उन गलतियों की कोई माफी नहीं है। हर्षा कुछ कहना ही नहीं चाहती। दिन भर की थकान और घर की उदासी के वातावरण के बाद उसमें इतनी जान ही नहीं बचती की वह कुछ कह सके। बस तूफान को गुजार देना चाहती है ताकि उदास ही सही शांति तो रहेगी कुछ लिखने पढ़ने के लिए घर में।

आकर सोफे पर बैठ गई। आँखें मूँद कर कुछ सोचते हुए। जाने किन तंद्राओं में भटकती रहती यदि किसी के आस पास आने जाने की आहट न मिली होती।

'बहुत थक गई हो?'

झटके से हर्षा ने आँखें खोली। कंप्यूटर की कुर्सी पर बैठते हुए जय का चेहरा न जाने क्यूँ अजीब सा व्यंग्य भरा लगा। ये शब्द सहानुभूति के लिए नहीं थे। इन दिनों में वह ये जान गई है।

"हाँ... आज साइट पर जाना पड़ गया। इसी वजह से देर..."

उसने माहौल को सपाट सा रखने के लिए कहा।

"हूँ... किसके ...साथ"

"मैडम, सिद्धार्थ और मैं। राधिका को भी चलना था लेकिन अचानक उसके भैया भाभी आ गए। इसलिए वह नहीं आ पाई।"

उसने आशंकित हृदय से टेबल पर पड़ी मैगजीन के पन्ने यूँ ही उलटते पलटते हुए कहा। जानती है कुछ न कुछ कड़वा ही कहेंगे। लेकिन आशा के विपरीत अपने काम में लगे रहे।

"...चाय और बना दूँ... साथ-साथ ...पी लेते हैं।"

"मै पी चुका हूँ और ...तुम तो... पीकर आई होगी... उस... उस ...के साथ..."

हर्षा ने साफ जाना कि ये शब्द दाँतों को जरा भींच कर गुस्से से कहे गए हैं। वह आहत हुई। अपमान से आँखों की कोर गीली हो गई लेकिन स्वयं को जब्त कर उठी। सोचा इनसे उलझने की बजाय उठकर खाना बना दूँ। देर हो जाएगी। जय को भी भूख लगी ही होगी। साइट के काम से थकान कम ही थी लेकिन जय के एक वाक्य ने जैसे उसे घायल कर दिया। लेकिन वह उसकी निरर्थक सोच का क्या करे?

जब तब जय सिद्धार्थ का नाम न लेकर उसी को संबोधित कर ताना मारते हैं। वह समझकर छलनी हो जाती है। कैसे उन निर्मूल शंकाओं का समाधान करे? चीख-चीख कर कहना चाहती कि क्यों अपनी सोचों में उलझकर घर की शांति को आग लगाते हो। उनको समझाना चाहती लेकिन समझाने से भी भला कोई समझा है क्या? सोच का ऐसा कोई खिड़की या द्वार नहीं होता जिससे उसमें पैठा जा सके। जिसकी जैसी भावना जन्म लेती रहती है। वह वैसा ही सोचता रहता है। वरना ऐसा कहाँ क्या देखा या सुना जो तीर चला चला कर दिल दुखाते हो।

ऑफिस की चर्चा वह घर पर कम ही करती है। ...कहीं यही वजह तो नही कि ऑफिस का रोजमर्रा का राग नहीं आलापती इससे जय को लगता है कि वह कुछ छुपा रही है? लेकिन घर में ऑफिस की बात व ऑफिस में घरेलू बातें न करने के उसके अपने सिद्धांत है। न कि कोई दूसरा कारण। तभी तो ऑफिस में उसकी एक अलग ही इमेज है। वह शांति चाहती है। ऑफिस में ऑफिस के अनुरूप व घर में घर के अनुरूप। इसीलिए उसने ये तालमेल बिठा रखा है। और जय सिद्धार्थ से एक बार ही तो मिला है। वह भी अनायास ही। कोई सोची समझी मुलाकात नहीं हुई।

सिद्धार्थ अच्छा सुलझा हुआ युवक है। ऑफिस जाते ही अच्छी दोस्ती हो गई उससे। दो चार दिन बाद ही कैंटीन में चाय पीते वक्त भावुक होकर सिद्धार्थ ने कहा -

"आप बिलकुल मेरी दीदी जैसी दिखती हैं। बातचीत का लहजा भी वैसा ही। दीदी तो मेरी दूर दूसरे शहर में है। क्या मैं आपको ही दीदी कहूँ तो आपको ऐतराज तो नही।"

उस वक्त उस दीदी का वह छोटा भाई बेहद मासूम और स्वस्थ भावना वाला लगा था। अन्यथा हर्षा को बेवजह रिश्ते गाँठना पसंद नहीं है। हर कोई सचमुच भाई नहीं होता। और न ही भाई कह कर उसमें वह भावना भरी जा सकती है ।

इसलिए पुरुषों को केवल गैर के दायरे में ही रखना चाहिए। लेकिन सिद्धार्थ के चेहरे में एक स्वच्छता सी नजर आई थी हर्षा को, कि उसका दीदी कहना अखरा नहीं।

"लेकिन एक शर्त है दीदी!"

"वो क्या" वह उत्सुकता से देखने लगी कि भला इसमें कौन सी और क्या शर्त हो सकती है। अजब लड़का है। वह अनायास ही कयास लगाने लगी कि क्या कहेगा सिद्धार्थ?

"अरे! चिंता में मत पड़िए दीदी! मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि सबके सामने मैं आपको हर्षा जी ही कहूँगा। क्योंकि जहाँ तहाँ रिश्ते गाँठ कर सबके सामने दीदी दीदी कहकर अपनी सज्जनता और भलमनसी का ढिंढोरा पीटना मुझे नहीं सुहाता। पहले हवाई रिश्ते बनाओ तो फिर किसी न किसी बात पर मनमुटाव हो ही जाता है क्योकि रिश्तों के बंधन में औपचारिकता और उसका पूरा निर्वाह न होना दरार ला देती है। इसलिए मेरी अच्छी दीदी! हम दोनों भाई-बहन हमेशा रहेंगे लेकिन औपचारिकता रहित।" मुस्कुराते हुए उसने कहा।

बिलकुल अपने जैसे विचार जानकर वह हतप्रभ रह गई। और सचमुच बेहद संतुलित सम्मानपूर्वक रहा था सिद्धार्थ। केवल कैंटीन में ही खुलकर बात करता। अपनी बीमार माँ की, दीदी की। पिता थे नहीं। बस यही परिवार था। माँ को बेहद सम्मान देता। उनकी भावनाएँ समझता। सच ही है। जो अपनी माँ और बहन को समझ ले वह दुनिया की हर स्त्री को सम्मान से देखता है। अन्यथा वह केवल उसे नारी ही नजर आती है। ऑफिस में लाकर दो बार माँ से भी मिला दिया था। घर चलने का आग्रह हर्षा ने हमेशा ही टाला और कभी सिद्धार्थ को भी अपने घर चलने का न्यौता न दिया।

जय को वह आदर की दृष्टि से देखता। कई बार जय से मिलने की इच्छा प्रकट की लेकिन उसने ध्यान न दिया। जाने क्या सोच कर उसने जय से मिलाना उचित न

समझा। अब लगता है ठीक ही किया। अन्यथा जो ताने उसे आज आहत कर रहे है। वही कब के शुरू हो गए होते। हर्षा को जय की मानसिकता पर हँसी आ गई। कितनी छोटी सोच रखते है जय। अपने आपको आधुनिक कहते नहीं अघाते लेकिन सोच वही सामंती कूपमंडूकता वाली। पत्नी के लिए पैरों में बेड़ियाँ डालना हमेशा सुहाता है।

शादी के कुछ दिनों बाद ही हर्षा के लिए ढेर सारे कपड़ों का कूरियर आया। माँ के इस प्यार को देख कर वह झूम उठी। पैकेट खोला तो कपड़ों के रंग, पुरानी घिसी पिटी डिजायन देख कर वह माँ पर फोन पर ही बरस पड़ी। माँ ने रुँधी आवाज में बताया कि जय का फोन आया था कि हर्षा के लिए ऐसे ऐसे डिजायन के कपड़े भेज दीजिएगा। वो कपड़े नहीं चलेंगे। सुन कर ही जैसे फुँफकार उठी हर्षा। वह जान गई कि जय हर्षा की सुंदर छवि से आतंकित रहने लगे हैं। एक तो खुद की ऐसी घटिया सोच और उस पर भी ससुराल वालों पर धौंस कि दूसरे कपड़े भी वे ही भेजें। खुद कुछ रुपये भी खर्च कर नहीं सकते। और तो और मुझसे पूछने की भी जरूरत नहीं समझी कि मुझे वो पसंद भी आएँगे कि नहीं। जैसे वह पत्नी नहीं खरीदी हुई जर गुलाम है। प्यार से कहा होता तो वह खुद शायद मान जाती। लेकिन उफ! ...किन शब्दों में अपना क्रोध जताए? सिर नोंच लिया उसने अपना।

कभी सोचा भी नहीं था कि उसे ऐसी सोच वाले कुंठित व्यक्ति के साथ जीवन गुजारना पड़ेगा। सारे सपने उस एक घटना ने चूर कर दिए। पुरुषों की खुद की सूरत भले कैसी भी हो कामना हूर सी पत्नी की रखेंगे। फिर ताउम्र अपनी कुंठित सोच के तले बिचारी निर्दोष पत्नीयों के सम्मान को रौंदते रह कर अपने आपको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने की कोशिश करेंगे। निरीह पर धौंस जमाना नहीं बल्कि ऊँची सोच इनसान को ऊँचा उठाती है। लेकिन हीन भावना से ग्रस्त ये पुरुष अच्छी सोच वालों की छाया छूने से भी कतराते है। प्रत्यक्ष में अपने आपको कमतर ये सहन नहीं कर सकते। अपनी कुंठित सोचों में कूप मंडूक बने रहते है। समझना ही नही चाहते कि बड़प्पन सबका दिल जीतने में हैं आतंकित करने में नही।

उस दिन अचानक ही शाम को सिद्धार्थ आया। हैरान परेशान बदहवास सा। झट पट जय को नमस्ते किया और बोला -

"हर्षा जी चलिए ना। माँ अस्पताल में हैं। ...आज बहुत तेज दर्द हुआ तो जबर्दस्ती अस्पताल लेकर गया। डॉक्टर ने ऑपरेशन के लिए कहा है। लेकिन माँ मान ही नहीं रही हैं। कहती हैं ठीक हो जाएगा। भला बीमारी भी कभी अपने आप ठीक हुई है। ठीक ही होना होता तो इतनी बढ़ती ही क्यों। ...आप चलकर समझाइए ना... दीदी यहाँ होती तो बहुत सहारा रहता... आपका विश्वास करती है... आपसे जरूर मान जाएँगी... प्लीज चलिए ना... मुझे बहुत घबराहट हो रही है... जल्दी ही आपको घर वापिस छोड़ दूँगा।..."

यह सब एक साथ ही कह गया। दया उमड़ आई उस पर। उस घड़ी लगा परिवार, रिश्तेदार कितने जरूरी होते है इनसान के लिए।

वह फुर्ती से चल पड़ी। बेहद निरुपाय सा लग रहा था वह। उसकी चिंता में उसे जय से आज्ञा लेने का खयाल ही न रहा। ये सारी गतिविधि जय बुत बना देखता ही रह गया।

वपिस लौटी तो घर में तूफान के पहले की शांति थी। भन्नाए हुए बैठे थे। गुस्सा हलक में फट पड़ने के लिए रोका हुआ था। भीतर प्रवेश करते ही उस दिन जय की निर्मूल धारणाओं का बाँध फूट पड़ा। किस दर्जे की छोटी बातें न की, क्या-क्या इल्जाम न दिए। वह केवल विस्फारित आँखों से उसका वह रूप देखती रही। सदमे सी हालत में वह सोचती ही रही कि उससे कहाँ गलती हुई है? उस जैसे आदमी से वह निभा रही है वही क्या कम है। और इनसानियत के नाते किसी की मदद करने के लिए भी किसी की आज्ञा की जरूरत है। उसका असली रूप सामने आ गया था। वही बुरी तरह से ठगा महसूस कर रही थी। उसने सोचा भी नहीं था कि जय ऐसे इल्जाम भी लगा सकता है।

दो- तीन दिन ऑफिस न जा पाई। जब गई तो उसका निचुड़ा चेहरा देख सारा ऑफिस दंग रह गया था। भला हर्षा जी को क्या परेशानी हो सकती है? लेकिन वो नहीं जानते कि पुरुष की सोच की सजा सदैव ही औरत को ही भुगतनी पड़ती है। सिद्धार्थ को भी बड़ी मुश्किल से विश्वास दिला पाई थी कि तबियत ही ठीक नहीं है और कोई बात नहीं। अक्सर ही कहता माँ आपको याद करती है लेकिन वह फोन पर ही बात कर इति कर देती। सिद्धार्थ को जय की सोच के बारे में बताकर वह जय का सम्मान कम नहीं करना चाहती। नारी का मन भी अजीब है। पति का सम्मान किसी की नजरों में कम

नहीं होने देना चाहती। पति भले ही कैसा भी क्यूँ न हो। दुनिया के सामने उसका अच्छा रूप ही प्रस्तुत करती है। सदैव ही अभिनय ही करती है।

वैसे भी उन दिनों नाराज ही चल रहे थे। उनकी कंपनी अचानक ही बंद हो गई थी। भाग-दौड़ कर दूसरी प्राइवेट नौकरी ढूँढ़ ली लेकिन पद और वेतन इच्छानुरूप न थे। सबसे बड़ी बात हर्षा से नीची पोस्ट थी। बस यही बात उनके मन में अवसाद के रूप में रहती। वह इल्जाम लगाकर अपने अहं की तुष्टि चाहता। उसकी कमीज मेरी कमीज से सफेद क्यों की तर्ज पर वो हर्षा मुझसे सभ्य क्यों? बस एक बार सिद्धार्थ को घर देखा और अपनी सोचों महल खड़े कर लिए। हर्षा पर ही कहे-अनकहे रूप से सारा क्रोध येनकेन प्रकारेण निकलता। वह चुप रहती। उस दंभी पुरुष को समझ लिया था उसने। पत्नी से किसी भी स्तर पर कमती असहनीय होती है। लेकिन औरत किसी भी स्तर की हो लार टपकाने से बाज नहीं आते। देख कर ही बाँछें खिल जाती है। वह घटना क्या भूल गए जय...

भाई की शादी में मायके गई थी। गई थी हफ्ते भर के लिए लेकिन चार ही दिन बाद वापिस आ गई। सोचा जय को दोनों समय भोजन की परेशानी होती होगी। लॉज का खाना खा खा कर अपना पेट ही खराब कर डालेगें। चाबी पास ही थी। दरवाजा खोल दिया। जो देखा तो दंग रह गई।

निहायत आधुनिक वस्त्रों वाली एक लड़की के बगल में बिलकुल सट कर बैठे थे जय। लड़की का हाथ अपने हाथों में ले कुछ फुसफुसा रहे थे। मुझे देख कर जैसे आसमाँ से गिरे। लड़की बुरी तरह झेंप गई। दोनों के माथे पर भरपूर पसीना चू आया। उस मुश्किल घड़ी में भी उनकी काटो तो खून नहीं वाली स्थिति देख हँसी आ गई। लड़की ने इशारे में पूछा कौन? जय ने थूक गटकते बड़ी मुश्किल से कहा, 'मेरी पत्नी' 'पत्नी!!!!' वह उछल कर चीखी।

हर्षा ने सब्र रख कर नमस्ते किया। वह जानती है कि चीखने चिल्लाने से जय घबराने वालों में से नहीं है। लड़की बुरी तरह सिटपिटा गई। ऐसी उम्मीद उसे किसी पत्नी से नहीं रही होगी।

वह अपना पर्स सँभाल कर जाने को उद्यत हुई। लेकिन हर्षा ने उसे बेहद अपनेपन से बिठाया और चाय पिला कर ही भेजा। जय कुछ कहना चाहते थे लेकिन वह सहज ही बनी रही जैसे कुछ हुआ ही न हो। लेकिन बाथरूम में नहाने के बहाने घुसी तो टूटे विश्वास ने जैसे नदिया बहा दी खारे पानी की।

बाथरूम से वापिस आई तो देखा जय उसी तरह सिर झुकाए बैठे है। उसने सोचा चलो कुछ तो हया बची है जय में। वरना वह तो उससे किसी किस्म की सज्जनता की उम्मीद छोड़ने वाली थी।

"वो...वो..."

"रहने दो जय! बस इतना कर दो कि यह सब घर से बाहर रखो प्लीज!! घर की पवित्रता को नष्ट न करो। मैं अपने कमरे में ही अपनापन महसूस करती हूँ। उसे तो कम से कम गलीज मत करो।"

इससे आगे उससे कुछ कहा न गया।

जय के ऑफिस फोन किया। बॉस ने कहा "हम आपको सूचित करने ही वाले थे मैम! मुझे भी इन दिनों कुछ आभास होने लगा था। पर अब आप चिंता मत कीजिए! लड़की कैंटीन वाले की बेटी है। मैं उसे लताड़ दूँगा। और हुआ तो उसे निकाल ही दूँगा। आप जय को समझाइए। वैसे इतना भी बुरा नहीं है जय।"

उसे कुछ तसल्ली हुई। इसलिए नहीं कि बात यहीं खतम हो गई। बल्कि इसलिए कि माँ तक कुछ भी पहुँचने से बच जाएगा। वरना उनका भ्रम टूट जाएगा, अपने गुणी जँवाई का।

भला हो हर्षा की तकदीर या समय का कि कंपनी अचानक ही बंद हो गई नहीं तो वह घटना घटनाक्रम बन गया होता।

लेकिन उस के बाद से ही हर्षा और जय के रिश्ते में वो मजबूती ना रही। अब यदि ऐसा नही है तो शायद जय के रिश्ते में पहले भी कोई प्रेम की दृढता नहीं थी। ऐसा होता तो उनके प्रेम में कोई यूँ ही सेंध न लगा देता। कहीं न कहीं तो पोल थी ही। पहले भी हर्षा

की तरफ से ही बेहद प्रेम था और जय के प्रेम का भ्रम। और अब तो हर्षा ही इस घर को मकान बनने से बचाने पर अडिग थी।

उस दिन के बाद से उसने सिद्धार्थ से बातचीत घटाते घ्टाते बिल्कुल ही कम कर दी। यहाँ तक कि आमने सामने पड़ने पर मुसकुराने भर तक कर ली। अब तो किसी से मित्रता करने में भी उसे डर लगने लगा है। सोचती किसी दूसरे को क्यों अपने पति की मानसिक कीचड़ में घसीटूँ। उसे लगता पत्नी अपने मित्र भी अपनी मर्जी से नहीं चुन सकती। उसमें भी पुरुष की मानसिकता को ढोना पड़ता। पति तो जैसा मिलना था मिल चुका। उसमें तो राय का प्रश्न ही नहीं उठता। पति का जैसा जुगाड़ सकते हैं जुगाड़ कर हमेशा के लिए उसके हवाले कर दिया जाता है। सहेली या मित्र ही तो बचते हैं जिन्हें वह खुद अपने विचारों के अनुरूप चुनना चाहती, अपनी रुचियाँ पूरी करना चाहती है, अपनी पसंद के हर काम करना चाहती है। वहाँ पर भी पग पग पर लकीर खींचते रहेंगे। ये मत करो, उनसे मत मिलो, वहाँ मत जाओ, ये मुझे पसंद नहीं, ये मेरे घर वालों को पसंद नहीं। उफ!!!!

सोच सोच कर सिर दर्द से फटने लगता है। कितना ही समय ऐसे ही सोचते सोचते बीत जाता है उसे पता ही नहीं चलता। जाने किन विचारों की अँधेरी गलियों में व्यर्थ भटकती रहती है?

जीवन बड़ा अजीब सा हो चला है। इस समांतर जीवन से तंग आ गई है वह। दोनों सवेरे अपने अपने रास्ते पकड़ते है। शाम ढले वह सब्जी वगैरह लेकर घर लौटती है। जय तो निर्लिप्त से रहते हैं। कोई मतलब ही नही है गृहस्थी से। तमाम तरह के बिल और अन्य औपचारिकताएँ वही निपटाती है। सोचती है ठीक ही है। इसी में समय व्यतीत हो जाता है। उत्साहहीन ढर्रे पर चलते जीवन की जरूरतें भी कम हो जाती है। जीवन के सारे शौक, मनोरंजन का संबंध तो सीधा खुशी और उमंग से है। जब वही नहीं है तो एक लकीर सी रह जाती है जिसे यंत्र की तरह पीटना पड़ता है।

जो खाना बनाती है। चुपचाप खा लेते है। न पहले की तरह उलाहना न शिकायत। कई महीने कैसे से निकल गए। कई कई दिन औपचारिक बातचीत भी नहीं होती। बिना लक्ष्य घिसटती जिंदगी त्रासदी न बन कर रह जाए? हर्षा यही सोचती है आजकल।

कहाँ जाए? और कहीं उसके लिए सुख के टोकरे भरे पड़े है? समझौता और सामंजस्य तो हर कहीं बिठाने ही पड़ेंगे। चाहे स्त्री दुनिया के किसी भी कोने में चली जाए। बस रूप बदलते रहेंगे। दूसरे हाल पर दुनिया के सवाल कौन सा जीने देते है स्त्री को? कम से कम लोग जय की पत्नी के रूप में सम्मानजनक नजरों से तो देखते है। तलाकशुदा या पति से अलग रहने वाली स्त्रियों की यंत्रणा देखी है। एक जंजाल में उलझ कर रह जाती है।

आईने में अपना चेहरा देखती है तो चेहरा वीरानगी का पता देता है। कुछ ही सालों, बल्कि महीनों ने उसके लावण्य पर झाड़ू सी फेर दी है। आँखों की जगह जैसे गहरे भूरे रंग के कटोरों ने ले ली है। उसकी स्वयं को आकर्षित करने वाली भी छवि भी बुझने लगी है।

जय में भी इन दिनों परिवर्तन पाने लगी है। थोड़े से खुश नजर आते है। सामने देखकर तो नहीं बल्कि आते जाते सहज बातों का पुल बाँधने लगे हैं। वह भी अब थोड़ा सा सामान्य होने की कोशिश करती है।

जय के दोस्त विनय की शादी की सालगिरह पार्टी में जाना है। मन तो बिलकुल साथ नहीं दे रहा लेकिन जाना जरूरी है। न जाने क्या सोच कर जय की पसंद की गुलाबी रंग की साड़ी चुन ली पार्टी के लिए। कई दिनों से त्यागे से पड़े मेकअप की चीजों ने उसे थोड़ा आकर्षित किया। तैयार होकर बाहर निकली तो जय बस देखते ही रह गए। कुछ कहना चाहते लगे लेकिन वह आगे बढ़ गई। गाड़ी में बैठते हुए उस ने शीशे में से देखा एकाएक चेहरा उतर गया जय का। बगल में बैठे हुए जय को कनखियों से देखा। हर्षा की पसंदीदा नीली शर्ट पहनी है आज। जिसे वह उसके शादी के बाद आए पहले जन्मदिन पर दी थी। ठंडी सी प्रतिक्रिया देकर बस लेकर रख ली थी। पहना कभी नहीं। उसके बाद कुछ तोहफा देने की उमंग ही नहीं उठी। आज उसी शर्ट में देखकर उसने सोचा इस बार अच्छा सा नाइट सूट देगी। हल्की सी ठंडक महसूस की हर्षा ने।

विनय और अंजलि की कैसी सुंदर जोड़ी है। हँसते मुसकराते दोनों जैसे एक दूसरे के लिए ही बने हैं। दोनों ही एक दूसरे की तकलीफ उठाने को जैसे तत्पर रहते। और उनका प्यारी सी बेटी। जैसे उनका प्रेम सजीव हो मुसकुरा रहा हो। उन्हें देख जय ने

एक ठंडी साँस भर कर हर्षा को देखा तो वह भी जय को ही देख रही थी भीगी आँखों की कोर से। एकाएक ही उसे यह दर्द भी साल गया कि चार साल होने को आए है उनकी शादी को अब तक बच्चे के बारे में सोचा क्यूँ नहीं? कहीं प्रकृति उनसे यही इशारा तो नहीं कर रही?

जीवन में उतार चढ़ाव तो आते ही रहते है। इन बातों से ही दोनों एक दूसरे से छिटक कर दूर जा खड़े है अजनबियों की तरह। फिर पति पत्नी को जीवनसाथी यूँ ही तो नहीं कह दिया जाता? क्या किसी की गलती पर उसे माफ कर उसका हाथ नहीं थामा जा सकता? उसे फिर से साथ नहीं लिया जा सकता? क्या पता जय भी मेरा ही इंतजार कर रहे हों?

हर्षा ने आँसुओं से लबालब आँखों से जय को देखा तो वे स्वयं डबडबाई आँखें लिए हर्षा की ओर दोनों बाँहें फैलाए थे उसे थामने के लिए।

इसी क्षण की तो उसे प्रतीक्षा थी। उसने एक नजर इधर उधर देखा और दौड़ कर जय की बाँहों में समा गई। ..